अध्याय दूसरा

कबीर कालीन सामाजिक परिस्थिति।

कबीर कालीन सामाजिक परिस्थिति ----

कबीर और उनका साहित्य इनका विचार करते हुए, यह स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों का उन पर असर होना स्वाभाविक ही है । कबीर-काल में राजनीतिक,आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक और सामाजिक संघर्ष बडी मात्रा में थे । कबीर के काव्य में अभिव्यक्त समाज-दर्शन का अध्ययन करते हुए हमें सभी की ओर ध्यान देना होगा और खास करके उस समय की सामाजिक परिस्थितियों की ओर विशेष ध्यान देना होगा । किसी भी समय की सामाजिक परिस्थितियाँ संघर्षों का परिणाम मात्र होती हैं ।

कबीर कालीन सामाजिक स्थिति --

"समाज" शब्द का अर्थ किसी प्रदेश या भूखंड में रहनेवाले उस जन समूह से है, जिन में सांस्कृतिक एकता होती है । लेकिन मध्य कालीन समाज में विभिन्न धर्म, जाति, सम्प्रदाय और राज्य के रूप में समाज इस प्रकार बिखर गया था कि, तत्कालीन संस्कृति के अनेक रूप बन गये थे । इस विभिन्नता का आंशिक रूप मूल ~~स्रोत~~ वैदिक काल-से ही दिखायी देता है । कर्म के आधार पर वर्ण व्यवस्था का सूत्र पात वैदिक काल से ही प्रारंभ हो गया था ।"[१]

भले ही उस समय वर्ण का चुनाव ऐच्छिक था । कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से किसी वर्ण या जाति का बन सकता था । कालान्तर में एक वर्ण से दूसरे वर्ण में जाना बिल्कुल असंभव हो गया । उस समय वर्ण व्यवस्था का अलगाव श्रम विभाजन के रूप में किया गया था, ' जो सामाजिक प्रगति में सहायक था । (चातुर्वर्ण्यम् , मया सृष्टा गुण कर्म विभागश: । ') पर मध्यकाल तक आते-आते उस वर्ण व्यवस्था में बदल हुए जो समाज के लिए घोर घातक एवं भारतीय जनता की दुर्गति का कारण बन गये ।

विभिन्न जाति संघर्ष --

"वर्णाश्रम व्यवस्था हिन्दू धर्म का दृढ स्तम्भ है । यवनों के प्रारंभिक आक्रमणों के साथ-साथ यह स्तम्भ ही दृढतर होता गया । परिणाम यह हुआ कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच भेद-भावना और भी अधिक बढ़ गई । डा. कुरैशी ने हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था तथा उसके प्रभाव का अच्छा वर्णन किया है । उनका यहाँ तक कहना है कि द्विज लोग शूद्र और म्लेच्छों की छाया से घृणा करते थे । जो भी हो कबीर के समय में इस भेद-भावना के प्रति प्रतिक्रिया जागृत हो चली थी । इसी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ब्राह्मण तक शूद्र के शिष्य होने लगे थे ।" [२]

चातुर्वर्ण में ब्राह्मण विद्या का, क्षत्रिय लड़ने का, वैश्य कृषि तथा व्यवसाय का और शूद्र सब की सेवा करने का अधिकार रखते थे । आंशिक रूप में यही वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी । वर्ण से जातियाँ बनते समय उनमें छूत - अछूत तथा ऊँच-नीच का भाव बढ़ गया था । इससे वर्णों में तथा उनसे उत्पन्न जातियों में ईर्ष्या और संघर्ष की मात्रा भी बढ़ती गयी थी । जातियों के सीमित कर्म और सीमित अधिकार होने के कारण उनका जीवन एकांगी हो गया था । उनके आचरण में थोथापन एवं असंतोष का वे अनुभव कर रहे थे । ब्राह्मण केवल पठन-पाठन के अधिकारी होने के नाते धनहीन थे । क्षत्रिय अपने राज्य की रक्षा हेतु कटते-मरते थे । पर अन्य लोग सुरक्षित थे । वैश्य लोग खेती में काम करते थे । उनकी आय का अधिकांश भाग राजस्व में चला जाता था । शूद्र सब की सेवा

करने पर भी भूखे और वस्त्रहीन थे । इन में से कोई उच्च वर्ग का होने के लिए तरस रहा था, तो कोई धन संपत्ति तथा राज्य पाने के लिए । ये सामाजिक मान्यताएँ इनके गले की फँासी बन गयी थी ।

"लोक वेद कुल की मरजादा, इहैं गलैं मैं पासी ।
आधा चलि करि पीछा फिरिहैं ह्वै हैं जग मैं हासी ।।"[3]

निचले स्तर के लोगों के लिए यह व्यवस्था और भी दुखदायी तथा घातक थी । इसी कारण जाति-व्यवस्था का प्रबल विरोध निचली जाति के साधु-सन्तों द्वारा अधिक हुआ । शूद्र युगों-युगों से सेवक थे, सामाजिक गुलाम थे । उच्च वर्ग के लोग अपनी स्वार्थ-सिध्दि के लिए परम्परागत व्यवस्था बनाए रखना चाहते थे । पण्डित ,गुणी, शूर, कवि तथा दान देनेवाले पूँजीपति अपने को सबसे बडा कहते थे ।

`पण्डित गुनीं सूर कवि दाता, ऐ जु कहैं बड हम्हीं ।`[4]

बडी जातियाँ छोटी जातियों का शोषण करती थीं । समाज में निम्नवर्ग के लोग अपमान की दृष्टि से देखे जाते थे । समाज में ब्राह्मण - शूद्र का भेद - भाव बहुत था । शूद्रों की छाया से भी, कहीं उनकी छाया के स्पर्श से अपवित्र न हो जाए, ब्राह्मण उससे बचते थे । ऐसे अवसरों पर कबीर को भी लोगों से जूझना पडा है । निम्न जातिवाले अब दुहरी गुलामी में थे । एक तो वे हिन्दू उच्च जातियों के गुलाम थे ही, बाद में उन्हें मुसलमानों की भी गुलामी करनी पडी और इन सभी दुर्व्यवस्थाओं तथा दुर्व्यवहारों से वे मुक्त होना चाहते थे ।

हिन्दुओं का पराधिनत्व --

अपनी कमजोरियों के कारण ही हिन्दू-शासकों को पराजित और पराधीन होना पडा और उनकी प्रजा को बडे दु:खपूर्ण कष्ट झेलने पडे । उनके और उनकी प्रजा के (हिन्दू) रीति-रिवाजों को काफी ठेस पहुँची । जो - जो सुविधाएँ हिन्दू उच्च वर्णियों को प्राप्त थीं, वे सुविधाएँ आक्रमक मुसलमानी

शासकों के काल में उन्हें नहीं रहीं । उनके अधिकार सीमित हो गए । अतएव पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए हिन्दुओं के क्रान्तिकारी विचार विवशता में दबे हुए थे । छिट-पुट विद्रोह हुआ करते । हिंदुओं के क्रान्तिकारी विचार , जो कि मुसलमानी शासन व्यवस्था के विद्रोह में उमड़ आया करते थे । उनका असर जोरदार न हुआ करता था ।

"कबीर के समय में हिन्दू समाज अपनी घोर हीनावस्था में था । उसमें न तो किसी प्रकार का उत्साह अवशेष रह गया था और न कोई स्फूर्ति ही । उसमें शिक्षा और सभ्यता दोनों का अभाव था । यवनों के भावों और संस्कृति का उत्तरोत्तर विकास होता जाता था । हिन्दू संस्कृति और भाषा दोनों ही पूर्णतया उपेक्षित हो चली थी । साधारण जनता में शिक्षा का अभाव था । समुचित शिक्षा के अभाव में अनेक प्रकार के 'अंधविश्वास और आडम्बर' समाज में फैलते चले जा रहे थे । धर्म के ठेकेदारों की तूती बोल रही थी । विकृत रूप के प्रति कबीर की आत्मा विद्रोह कर उठी । उनकी वाणी में इस विद्रोह भावना को अच्छी अभिव्यक्ति मिलती है ।"[5]

"आशय यह है कि तुर्क और अफगानों के आगमन से पूर्व ही देशवासियों में खान-पान एवं विवाह आदि सम्बन्धी नियम इतने चुस्त बना दिए गए थे कि हिन्दू समाज में किसी विधर्मी या विदेशी के प्रवेश की संभावना नहीं के बराबर रह गई थी । दूसरे स्वधर्म एवं स्ववंश आदि की पवित्रता तथा श्रेष्ठता की मान्यता लोगों में इतनी दृढ़ हो चुकी थी कि, 'स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:' की उक्ति चरितार्थ होती थी ।"[6]

हिन्दू - मुसलमान का जातिगत संघर्ष ---

कबीर कालीन समाज में हिन्दू-मुसलमान का जातिगत भेद - भाव बहुत था । दोनों की अपनी अलग व्यवस्थाएँ थीं, अपने धार्मिक संस्कार थे । हिन्दू समाज अपनी परम्परागत मान्यताओं में बह रहा था, तो मुसलमान समाज भी लकीर का

फकीर बना हुआ था । दोनों भी सही रास्ते छोडकर पथ भ्रष्ट हुए थे । मुसलमानी शासक जातिगत पक्षपात करते थे । अपने धर्म-प्रचार हेतु, वह यह करते थे । अच्छे पदों पर मुसलमानों की नियुक्ति होती थी और साधारण पदों पर हिन्दुओं की । इससे मुसलमान रईस बनते गए तो हिन्दू गरीब । दोनों में काफी असमानता होने से दोनों में संघर्ष के भाव और बढ़े ।

कबीर कालीन समाज के व्यवसाय और व्यापार पर भी हम दृष्टिपात करें तो यह दिखायी देगा कि गवर्नर तथा जिले के हाकीम मुसलमान थे । पटवारी, लेखपाल, कोषाध्यक्ष और जिले के अन्य कर्मचारी प्राय: हिन्दू हुआ करते थे । इस्लाम धर्म के सम्बन्धित कानून के अधिकारी 'काजी' हुआ करते थे और उनके हाथों न्यायाधिकार होता रहता था ।

"मुसलमान आक्रमणकारी सैनिक साहसिकता के पक्षपाती थे, इसीलिए वे व्यापार को घृणा की दृष्टि से देखते थे । भारतीय व्यापार शैली में 'हुंडी' एवं 'उधारखाते' का विशेष महत्व था । मुसलमानों के लिए यह रहस्य बना हुआ था । व्यापारी जातियों के लाभ का अधिकांश भाग सरकारी कोष और हाकिमों की जेब में जाता था, परन्तु हिन्दू बनिया जाति आज की भाँति ही सामाजिक ढाँचे का एक आवश्यक अंग थी । हिन्दुओं से अधिक कर वसूल किये जाने के कारण अधिकांश जनता दीन थी । जनता स्वतंत्र व्यवसाय से ही उदर पूर्ति करती थी । हिन्दुओं के बहुत से व्यवसाय मुसलमानों द्वारा अपनाने का कारण यह था कि धर्मान्तरण के उपरान्त भी बहुत से व्यावसायियोंने अपने व्यवसायों का त्याग नहीं किया था ।"[७]

"सामाजिक उच्चता को हिन्दू व्यवसाय के मापदण्ड से मापते हैं । इनकी दृष्टि में धर्म और व्यवसाय में एक सम्बन्ध था । परन्तु मुसलमान धर्म और व्यवसाय को पृथक - पृथक मानते थे । पुजारी पण्डों ने धर्म को व्यवसाय बना दिया था । उनका औदार्य और चारित्रिक गुण विलिन हो चुके थे । संकीर्णता, दंभ एवं पाखण्ड का हिन्दू समाज में अत्यधिक विकास हुआ था ।"[८]

कबीरकालीन समाज में जातिवाद की समस्या जटिल थी । इस जातिवाद की समस्या ने समाज को विभिन्न वर्गों में बाँट दिया था और इसी के कारण समाज में संघर्ष की विभिन्न स्थितियाँ पैदा हो गयी थीं । ब्राह्मण अपने को पवित्र और सर्वश्रेष्ठ समझाते थे तो मुसलमान अपने को कट्टरधर्मी और शक्तिशाली समझते थे । हिन्दुओं में अनेक जातियाँ थीं जिनमें एक दूसरे के प्रति ऊँच-नीच, छुआछूत का भेद भाव था । मुसलमानों में भी अनेक धर्म और सम्प्रदाय थे जिसके कारण वे एक दूसरे से अलग हो गए थे । इस प्रकार हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों पर जातियता का पक्का रंग चढ गया था, जिसे न कोई उपदेश मिटा सकता था और न कोई धर्म एक कर सकता था ।

" हिन्दू-मुसलमानों के बीच जो संघर्ष था उससे भयानक ज्वालाएँ निकल रही थीं । उनको शान्त करने के लिए कबीर के क्रान्ति-संदेश ने जलधारा का काम किया ।कबीर का यह प्रयत्न एक अनूठा उपक्रम था जिसमें दो भिन्न संस्कृतियों को मिलाने की चेष्टा थी, जिसमें मानवतावाद का स्वर मुखर था । परवर्ती सन्तों के लिए कबीर-वाणी एक अविच्छिन्न स्त्रोत सिध्द हुई । उन्होंने इस मानव-प्रेम से प्रेरणा लेकर " इतिहास की रक्तधारा " को अनुराग-सरिता में बदलने का अन्यतम प्रयास कर न केवल मानवता को समुज्ज्वल किया अपितु वाणी को सरलतम वेश में भी कमनीय बना दिया । "

वास्तव में कबीर एक ऐसी युग-सन्धि के काल में पैदा हुए थे जिसमें हिन्दू-मुसलमान जातियों के उच्च वर्गों में एक-दूसरे के प्रति चाहे कितनी ही असहिष्णुता क्यों न रही हो, एक - दूसरे के निकट आने की और परस्पर मिलते रहने की भावना बलवती होती जा रही थी और युग की आवश्यकता यह थी कि कोई सर्वसाधारण के अनियंत्रित विक्षोभ और विद्रोह को एक सरल सीधा और उपयुक्त मार्ग दिखा सके । जैसे की आगे चलकर कबीर ने दिखा दिया ।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

हिन्दू-मुसलमान का धर्मगत संघर्ष --

कबीर-काल में समाज में धर्म की समस्या जीवन की मूल समस्या थी । दोनों को एक धर्म से जोड़ना बड़ा कठिन काम था । मुसलमान हिन्दुओं के विरोधी बनकर भारत में आए थे और दोनों धर्मों की मान्यताएँ, दो अलग अलग भौगोलिक परिस्थिति में बनी थीं । दोनों के रीति-रिवाज, खान-पान एक - दूसरे से सर्वथा भिन्न थे । सहज रूप से दोनों ने अपनी अपनी धार्मिक मान्यताओं को अपनाया था । कोई भी धर्मच्युत होना पसन्द नहीं करता था । धर्म और जाति की रक्षा के लिए कुछ भी बलिदान करने के लिए दोनों तैयार थे । अपने अपने धर्म से दोनों को बड़ा ही मोह था और दूसरे के धर्म से बड़ा विरोध भी था । धर्म के नाम पर तरह-तरह के अत्याचार ढाए जाते थे । किसी को जलाया भी जाता था तो कर-भार से बहुतों को पीड़ित किया जाता था ।

कबीर काल में हिन्दू-मुसलमान का धर्मगत भेद अधिक था जिसके कारण दोनों में संघर्ष हुआ करते थे । दोनों जातियों में धर्म के नाम पर अन्धानुकरण था । दोनों अपने अपने धर्म की सीमित दीवारों के बीच रहना पसन्द करते थे । यदि ये दोनों जातियाँ धर्म के सीमित क्षेत्र से दूर होतीं तो अवश्य ही दोनों में संघर्ष न होता और दोनों का एक समाज होता ।

' तुर्क और अफगानों का लक्ष्य विजित प्रदेशों पर शासन करना मात्र नहीं था वरन वहाँ की जनता को इस्लाम को स्वीकार करने के लिए विवश भी करना था । इसलिए उन्होंने यहाँ के निवासियों पर राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक-अमानुषी अत्याचार भी किए । साथ ही वे अपने धर्म, जाति, एवं वंश के प्रति आत्म-गौरव से शून्य न थे । इस सब का परिणाम यह हुआ कि दोनों समाज एक - दूसरे को घृणा तथा द्वेष की दृष्टि से देखते और स्वयं से हीन कोटि का समझते थे । यदि हिन्दुओं की दृष्टि में मुसलमान धर्म, संस्कृति, वंश और मुख्यत: चारित्रिक पवित्रता एवं नैतिक जीवन - स्तर की दृष्टि से हीन और मांसाहारी तथा हिंसक होने के कारण अपवित्र थे, तो मुसलमानों की दृष्टि में हिन्दू-जातिवादी

मूर्तिपूजक, बहुदेव-उपासक एवं अपवित्र थे । अर्थात हिन्दुओं के लिए मुसलमान ' म्लेच्छ ' तो मुसलमानों के लिए हिन्दू ' काफिर ' थे । दोनों के धार्मिक एवं सामाजिक विचार भी भिन्न भिन्न थे । अत: समन्वय की कोई सम्भावना न होने के कारण देश में दो समानान्तर समाज अस्तित्व में आए ।'[10]

कबीर दोनों के धर्म एवं जाति की सीमा से परे थे । इसलिए उन्होंने जो कुछ भी कहा है दोनों के लिए कहा है । वे हमेशा ज्ञान या विचार को महत्व देते थे । जाति या धर्म के वे बिल्कुल पक्षपाती नहीं थे । उनका कहना था ' हिन्दू वही है, मुसलमान वही है ' जिसका ईमान ठीक हो ।'

कबीर के समय में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था जो इन सब सामाजिक बुराइयों को दूर करता और समाज को व्यवस्थित रूप देता । इस सामाजिक दुर्व्यवस्था के कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों के विचार टूट चुके थे । दोनों अपने - अपने धर्म एवं समाज को एक दूसरे से भिन्न समझ बैठे थे । व्यावहारिक जीवन में भी दोनों की परस्पर सहानुभूति नहीं थी । अत: जाति और धर्म के नाम पर समाज में दो विरोधी वर्ग बन गये थे जिसके कारण दोनों सदैव एक दूसरे से टकराते रहे ।

" जिहाद ' अभियानों के अंतर्गत मुसलमानों द्वारा बलात् कराया जानेवाला धर्म-परिवर्तन तत्कालीन हिन्दू समाज की एक मुख्य समस्या थी । जिसके समाधान स्वरूप भारतीय मनीषियों नें अनेक प्रयत्न भी किए । एक ओर भ्रष्ट हुए लोगों को पवित्र करके स्वधर्म में वापस लेने की व्यवस्था देनेवाली ' देवल स्मृति ' की रचना की गई । दूसरी ओर भक्ति के पुरस्कर्ताओं रामानुज एवं उनकी शिष्य परम्परा ने उपासना के क्षेत्र में जाति - पाँति के भेदभाव को अमान्य ठहराया । तो तीसरी ओर नाथपंथियों एवं सन्तोंने वर्ण व्यवस्था के मूल पर ही प्रहार किया । इन सन्तों में रामानन्द के ' निर्गुण पंथी ' बारह शिष्य-जिनमें कबीर अग्रगण्य थे एवं ज्ञानेश्वर व नामदेव आदि उल्लेखनीय हैं । शायद इन प्रयत्नों के फलस्वरूप ही तत्कालीन कर्मी जातियों के सामाजिक महत्व में सुधार हुआ था । यद्यपि यह दूषण सदैव के लिए नष्ट न हो सका ।"[11]

' कबीर ने दोनों समाजों में परिव्याप्त रूढ़ियों एवं अन्धविश्वासों का

खण्डन किया है और 'कहैं कबीर मैं हरिगुन गाऊँ, हिन्दु-तुरक दोऊ समझाऊँ' के अपने संकल्प या निश्चय के अनुसार उनमें बौध्दिक जागृति लाने का प्रयत्न किया है।[१२]

सामाजिक दुर्बलताएँ --

समाज का सारा वातावरण दुर्गुणों से दूषित था। नैतिकता का पतन हो गया था। राजनैतिक सुव्यवस्था न होने के कारण आर्थिक स्तर बहुत असमान हो चुका था। दूसरे को धोखा देकर अपना स्वार्थ सिध्द करना सहज बात बन गयी थी। समाज में जिस तरह ठग, लुटेरे दूसरों की कमाई पर जीवित रहते थे उसी तरह काजी, मुल्ला और पाण्डे भी लोगों को भ्रम में डालकर अपना स्वार्थ सिध्द कर रहे थे। कनक-कामिनी समाज को पग - पग पर उलझाते थे। भक्ति में भी शृंगारिक भाव बढ़ गया था। मुसलमानों की देखा देखी, हिन्दु समाज भी विलासी हो गया था। सुन्दरियों का बलात अपहरण तथा राज-दरबार में बहु नारी संग्रह विलासिता के प्रतीक थे। मुसलमानी शासकों का दुराचारी एवं विलासी जीवन व्यतीत करना लक्ष-सा हो गया था। फिरोज तुगलक के मंत्री खानेजहाँ ने अपने अंत:पुर में दो हजार से अधिक स्त्रियाँ रखी थीं। फिरोजशाह बहामनी के रनिवास में संसार के सभी देशों की सर्वश्रेष्ठ सहस्त्रों सुन्दरियाँ एकत्र थीं। (भारत में मुस्लिम शासन का इतिहास ' ले.ए.आर.शर्मा) काम वासना में अनुरक्त होकर समाज के नर - नारी नारकीय जीवन भोग रहे थे :--

> ' नर नारी सब नरक हैं, जब लग देह सकाम।
> कहैं कबीर ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम।। '[१३]

एक विवाह की जगह बहु विवाह होने लगे। इसके लिए न कोई नियम था, न कोई सामाजिक बन्धन। समाज में स्त्रियों का रुपगत महत्व अधिक था। इसीलिए वे केवल सुख - भोग की वस्तु बन गयीं और समाज में उनका स्थान प्रतिष्ठा पूर्ण नहीं रहा। पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ, सती-प्रथा का प्रचलन हुआ। पुरुषों की भाँति स्त्रियों को स्वतंत्रता न थी, वे पराधीन थीं। उनका मानसिक विकास अवरुध्द हुआ। कबीर ने रुपवती स्त्रियों को तत्कालीन समाज के पतन का कारण

माना है । वास्तव में तत्कालीन समाज मे प्रचलित विलासिता ही सामूहिक प्रगति में बाधक थी ।

' रज बीरज की कली, तापरि साज्या रूप ।
रॉम नॉम बिन बूडि है, कनक कॉमिणी कूप ।। '[१४]

' माया के झाख जग जल्या,कनक कॉमिणी लागि । '[१५]

' कबीर कालीन समाज में वेश्यागमन, मद्यपान ,चोरी ,बेईमानी, घूसखोरी आदि कुकृत्यों से समाज बहुत भ्रष्ट हुआ था ।

' परनारी राता फिरैं, चोरी बिढता खाँहिं । '[१६]

लालची, लोभी, मसखरों का समाज में आदर होता था । सज्जन लोग निरादर पाते थे ।

' लालच लोभी मसखरा, तिनकूँ आदर होई । '[१७]

मूर्खों तथा मतिहीनों का वर्ग समाज में बहुत था । जागरूक,ज्ञानी व्यक्ति बिरले ही थे । ज्ञानियों में भी शास्त्रीय एवं परम्परावादी विचार धारा को माननेवाले तथा भौतिकवाद या प्रत्यक्ष जीवन को माननेवाले कुछ दूसरे थे । पण्डित, मुल्ला , पाण्डे परम्परावादी थे, तो तत्कालीन सन्त प्रत्यक्ष जीवन को अधिक महत्व देनेवाले थे । वे हिन्दू-मुसलमान दोनों वर्गों में थे । दोनों वर्गों में वैचारिक संघर्ष था ।

सन्तों का क्रान्तिकारी वर्ग ---

' इसी समय कुछ ऐसे सन्त समाज सुधारक सामने आए, जिन्होंने दोनों समाज को सुधार कर एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न किया । इन सन्तों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे । दोनों ही सारग्राही महात्मा थे तथा जाति और धर्म के संकुचित घेरे से ऊपर उठे हुये थे । ऐसे सन्तों में रामानन्द,कबीर तथा जायसी आदि प्रमुख थे । ये दोनों वर्गों से अपने शिष्य बनाते थे , सब प्रकार से ऐक्य भावना को प्रोत्साहन देते थे । उपर्युक्त सामाजिक परिस्थितियों के फलस्वरूप इन सन्तों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दिखाई दीं :--

(१) एक सामान्य - धर्म पध्दति के प्रवर्तन की प्रवृत्ति ।

(२) मिथ्या डम्बर का विरोध - वर्ण - व्यवस्था आदि की उपेक्षा ।

(३) विलासिता के प्रति घृणा । १८

साधारण जनता का-सा सादगी में जीवन व्यतीत करने वाला सन्तों का एक - ऐसा क्रान्तिकारी वर्ग था जिसने सभी अत्याचारों एवं दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में अपना झाण्डा ऊँचा किया । ये सन्त अधिकतर निम्न जाति के थे, जो समाज और राज्य की तरफ से तिरस्कृत थे । इसीसे अपमानित जातियों का एक अलग वर्ग बना, जो सन्त समाज के नाम से जाना गया । उनमें जाति, धर्म, सम्प्रदाय को विशेष महत्व नहीं दिया गया । उन्हें सभी संकुचित सीमाओं को नकार कर उन्होंने मानव के मूल रूप को स्वीकार किया । मनुष्यों की एक जाति और सारे मानव मात्र का एक मूल धर्म यह उन्होंने माना । उन्होंने जीवन में सत्य को उतारा । इन का गुरु - सद्गुरु सत्य था । इनका ईश्वर सत् पुरुष सत्य था । सत्य उनके जीवन का सार था । तत्कालीन जनता ने सन्तों के इस अनुभूत सत्य को स्वीकार किया । तत्कालीन सारी व्यवस्थाएँ सत्य या न्याय रहित थीं । और इसी कारण सन्तों की आवाज तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक दुर्व्यवस्था के विरोध में मुखरित हुई । तत्कालीन सन्तों द्वारा की गई क्रान्ति काव्य के माध्यम से की जानेवाली सबल क्रान्ति थी साथ ही सामाजिक संघर्ष की ही सबल कड़ी थी ।

समाज में सर्वाधिक संख्या उनकी थी, जिनके लिए संस्कृति एवं धर्म जीवनगत विश्वास के रूप में था । जन साधारण के लिए धर्म परिवर्तन का प्रश्न विशेष महत्व का न था और फिर राजकीय पदों का प्रलोभन, सुरक्षा, भौतिक ऐश्वर्य का आकर्षण उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए जो प्रोत्साहित करता था । कबीर ने इस बहुसंख्यक समाज में अपने आदर्श और धर्म पर दृढ रहने का विश्वास और साहस उत्पन्न किया । कबीर के उद्यम और सतत प्रयास ने ही धर्म परिवर्तन के आन्दोलन को असफल बनाया और हिन्दू-धर्म तथा संस्कृति की रक्षा की । नैराश्य, भय और अत्याचार से संतप्त समाज को आशा, प्रेम और सद्भावना का सन्देश देकर कबीर ने महाकल्याणकारी कार्य किया । भारतीय समाज कबीर का सदैव ऋणी रहेगा ।

विश्व-बन्धुत्व और सात्विक प्रेम की ज्योति कबीर ने प्रज्वलित की थी, जो युग - युगान्तर तक मानव को एकता के सूत्र में बाँध कर सच्चा मानव बनाती रहेगी ।

निष्कर्ष ---

कबीर के समय राजनैतिक संघर्ष धार्मिक क्रान्ति के कारण समाज - जीवन तितर-बितर हो गया था । अपनी रोजी - रोटी के लिए कोई भी धर्म, कोई भी व्यवसाय अपनाने के लिए जनता तैयार होने लगी थी । आर्थिक समस्या मूल समस्या बन गयी थी । धर्म और जाति समाज की दुर्गति के कारण बन गये थे । उनकी प्रतिष्ठा समाप्त हो गयी थी । परिस्थितिवश हिन्दू जनता मुसलमान बनती जा रही थी । अब ऐसा धर्म संकट का काल आ गया था कि उसे किसी एक धर्म का बन जाना आवश्यक बन गया था ।

कबीर काल तक वर्णों से जातियाँ बनती गयी थीं । छुआ-छूत तथा ऊँच-नीच का भेद-भाव बढ़ गया था । हर किसी जाति को कर्म सम्बन्धी सीमित अधिकार थे । उससे उसका जीवन एकांगी तो हो गया ही था लेकिन आचरण के थोथेपन से वे असंतोष का अनुभव कर रहे थे । तथाकथित उच्च जातियाँ छोटी जातियों का शोषण करती थीं ।

मुसलमानी शासकों के काल में हिन्दुओं की पराधीनता बहुत कुछ बढ़ गयी थी । उन्हें प्राप्त सुख-सुविधाएँ आक्रमक मुसलमान शासकों के काल में उन्हें नहीं रही थीं । हिन्दू-मुसलमानों के बीच के संघर्ष ने भयानक ज्वालाओं का स्वरूप धारण कर लिया था । दोनों के रीति रिवाज, खान-पान एक-दूसरे से बहुत ही भिन्न थे । धर्म और जाति की रक्षा के लिए कुछ भी बलिदान करने के लिए दोनों तैयार थे । हिन्दुओं की दृष्टि में मुसलमान मुख्यत: चारित्रिक पवित्रता तथा नैतिक जीवन स्तर की दृष्टि से हीन और मांसाहारी तथा हिंसक होने के कारण अपवित्र थे, तो मुसलमानों की राय में हिन्दू जातिवादी, मूर्तिपूजक, बहुदेव उपासक, अपवित्र थे । हिन्दुओं के लिए मुसलमान ' म्लेंच्छ ' तो मुसलमानों के लिए हिन्दू ' काफिर ' थे ।

जिहाद तथा बलपूर्वक किया जानेवाला धर्मान्तर हिन्दू समाज की बडी समस्या थी । उसके फल स्वरूप भ्रष्ट हिन्दू धर्मियों को पवित्र करके स्वधर्म में वापस होने की व्यवस्था कुछ स्मृतिकार करने का प्रयत्न कर रहे थे, तो रामानुज एवं उनकी शिष्य परम्परा के भक्ति सम्प्रदाय को माननेवालों ने उपासना के क्षेत्र में जाति-पाँति के भेद-भाव को ना कबूल किया । नाथ-पंथी एवं सन्तों ने वर्ण व्यवस्था के मूल पर ही कुठाराघात किया ।

मुसलमानी शासकों द्वारा अनेकों सुन्दरियों का बलात्, अपहरण होता था । वासना के शिकार बनकर नर-नारी दोनों ही नारकीय जीवन भोग रहे थे । वेश्यागमन, मद्यपान,चोरी, बेईमानी, घुसखोरी आदि से समाज बहुत ही भ्रष्ट हो चुका था । तत्कालीन सारी व्यवस्था एँ सत्य या न्याय रहित थीं । इन सारी व्यवस्थाओं के विरुध्द सन्तों ने आवाज उठाई, खास करके कबीर ने सामाजिक तथा धार्मिक दुर्व्यवस्थाओं के विरोध में उन्होंने यह आवाज उठायी , तथा एक दूसरे के निकट आने की, मिलते रहने की भावना को, युग की आवश्यकताओं को बल प्रदान किया । इतिहास की रक्तधारा को अनुराग सरिता में बदलने का कबीर ने महान प्रयास किया ।

उन्होंने सभी संकुचित सीमाओं को नकार कर मानव के मूल रूप में स्वीकार लिया । सभी मनुष्यों की एक जाति और सारे मानव मात्र का एक मूलधर्म मान लिया । विश्व-बंधुत्व, सात्विक प्रेम की ज्योति प्रज्वलित की । कबीर ने मानव को मानवता के सूत्र में बाँधकर उसे सच्चा मानव बनाने का महान प्रयास किया ।

••

संदर्भ सूची

संदर्भ क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृ.क्र.	प्रकाशन । प्रकाशक एवं संस्करण
१	कबीर का सामाजिक दर्शन	डा. प्रहलाद मौर्य	५९	पुस्तक संस्थान कानपुर-१२,१९७४ ।
२	कबीर की विचारधारा	डा.गोविन्द त्रिगुणायत	७२,७३	साहित्य निकेतन कानपुर-१ तृतीय संस्करण श्रावणी संवत् २०२४
३	कबीर ग्रंथावली	डा. त्रिलोकीनारायण दीक्षित	५०९	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ-७
४	कबीर ग्रंथावली	डा. त्रिलोकीनारायण दीक्षित	५१४	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ-७
५	कबीर की विचारधारा	डा.गोविन्द त्रिगुणायत	७३	साहित्य निकेतन, कानपुर-१,तृतीय संस्करण श्रावणी संवत् २०२४
६	कबीर और अरवा तुलनात्मक अध्ययन	डा.रामनाथ शर्मा	६२	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी-१ प्रथम संस्करण,१९६३ ई
७	युगपुरुषा कबीर	डा.रामलाल वर्मा डा.रामचन्द्र वर्मा	५७	भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली-६ प्रथम संस्करण,१९७८

सं.क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृ.क्र.	प्रकाशन । प्रकाशक एवं संस्करण
८	युगपुरुष कबीर	डा.रामलाल वर्मा डा.रामचन्द्र वर्मा	५८	भारतीय ग्रंथ निकेतन दिल्ली-६ प्रथम संस्करण,१९७८
९	कबीर साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डा.आर्याप्रसाद त्रिपाठी	२५६	सरोज प्रकाशन इलाहाबाद-१ प्रथम संस्करण सितम्बर-१९७४
१०	कबीर और अखा तुलनात्मक अध्ययन	डा.रामनाथ शर्मा	६२	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी-१ प्रथम संस्करण १९८३ ई.
११	कबीर और अखा तुलनात्मक अध्ययन	डा.रामनाथ शर्मा	६३	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी-१ प्रथम संस्करण १९८३ ई.
१२	कबीर और अखा तुलनात्मक अध्ययन	डा.रामनाथ शर्मा	६९	विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी-१ प्रथम संस्करण १९८३ ई.
१३	कबीर-काव्य-कौस्तुभ	डा.बालमुकुन्द गुप्त	४९	साहित्य संगम,आगरा-३ चतुर्थ संस्करण १९७१ ई.

सं.क्र.	ग्रंथ का नाम	लेखक	पृ.क्र.	प्रकाशन । प्रकाशक एवं संस्करण
१४	कबीर ग्रंथावली	डा. त्रिलोकीनारायण दीक्षित	१८४	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ-७
१५	कबीर ग्रंथावली	डा. त्रिलोकीनारायण दीक्षित	१८८	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ -७
१६	कबीर ग्रंथावली	डा. त्रिलोकीनारायण दीक्षित	१९८	प्रकाशन केन्द्र लखनऊ-७
१७	कबीर का सामाजिक दर्शन	डा.प्रहलाद मौर्य	६३	पुस्तक संस्थान कानपुर-१२ १९७४
१८	कबीर की विचारधारा	डा.गोविन्द त्रिगुणायत	७४	साहित्य निकेतन कानपुर-१ तृतीय संस्करण श्रावणी संवत् २०२४ ।

••